

आत्मज्ञान पाने का सहज और सरल साधन

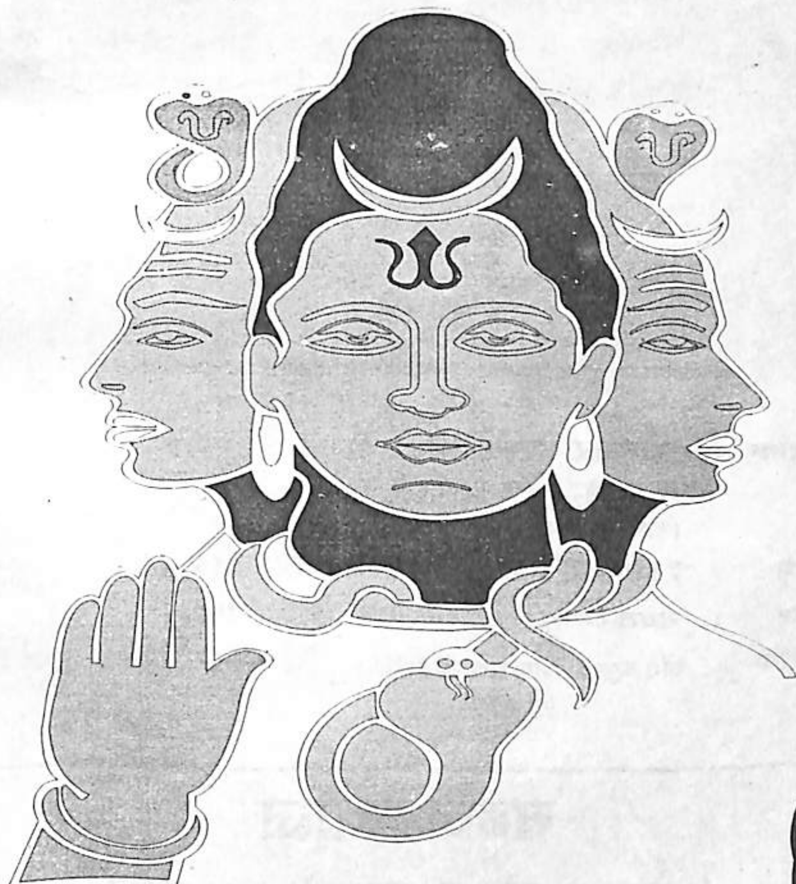
सहज खोज

अवतार कृष्ण गंजू

卐 ॐ नमः शिवाय 卐

'सहज खोज'

(आत्मज्ञान पाने का सहज और सरल साधन)



अवतार कृष्ण गंजू

प्रकाशक : अवतार कृष्ण गंजू
F-14/IA, मॉडल टाऊन II
दिल्ली-110009
फोन : 7216507,7453649, 7452894, 7247815
लेजर : रावत कम्प्यूटर्स, गांधी नगर, दिल्ली-110031
मुद्रक जे० एस० ऑफसेट प्रिंटर्स,
दिल्ली-51

सहज खोज

(आत्मज्ञान पाने का सहज और सरल साधन)

अवतार कृष्ण गंजू

मूल्य : प्रभु, गुरु तथा माता-पिता के चरणों में अर्पित ।

|| ॐ नमः शिवाय ||

'सहज खोज'

(आत्मज्ञान पाने का सहज साधन)



अवतार कृष्ण गंजू

प्रकाशक : अवतार कृष्ण गंजू
F-14/IA, मॉडल टाऊन II
दिल्ली-110009
फोन : 7216507,7453649, 7452894, 7247815
लेजर : रावत कम्प्यूटर्स, गांधी नगर, दिल्ली-110031
मुद्रक जे० एस० ऑफसेट प्रिंटर्स,
दिल्ली–51

सहज खोज

(आत्मज्ञान पाने का सहज और सरल साधन)

अवतार कृष्ण गंजू

मूल्य : प्रभु, गुरु तथा माता-पिता के चरणों में अर्पित ।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

'सहज खोज'

(आत्मज्ञान पाने का सहज साधन)



अवतार कृष्ण गंजू

आभार

मैं अपने माता-पिता का आभारी हूं जिन्होंने इस मिट्टी के माधो को कलम चलाना सिखाया ।

मैं अपने सद्‌गुरु भगवान ईश्वर स्वरूपजी महाराज का अत्यंत आभारी हूं जिनकी कृपा से मुझ जैसा नाचीज यह सेवा कार्य कर सका ।

मैं प्रभा देवी जी का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरी विनती स्वीकार कर इस पुस्तक को पढ़ा और इसका संशोधन करके इसे संवारा, इस कार्य को करने में उन्होंने मेरा साहस बढ़ाया। मैं प्रभु से उनके लिये दीर्घआयु की प्रार्थना करता हूं। प्रभादेवी जी हमारे ईश्वर स्वरूप तथा देवी शारिकाजी के पश्चात् अब ईश्वर आश्रम की पहचान हैं ।

(जय गुरुदेव)

ऐ. के. जी

॥ आचार्य देवो भव ॥

ध्यानमूलं गूर्रोमूर्ति पूजामूलं गुरोः पद्म।
शास्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।



मेरे गुरुदेव प्रत्यक्ष शिवस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज।

स्वामी जी शैवइज़म के सूर्य तथा कश्मीर शैवइज़म के

साक्षात् शिव थे। मुझ जैसा अनपढ़ उनके बारे में क्या लिख सकता है और कितना लिखूं कि उनकी कितनी कृपाएं मुझ पर और हमारे परिवार पर रहीं और इस समय भी चली आ रही हैं। मैं उनके आशीर्वाद से आशावान हूं कि यह कृपा भविष्य में और अधिक बढ़ेगी। मैं किसी संशय के बिना यह कहूंगा कि यदि उनके बारे में लिखने लगें तो—

असित गिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमूर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।

इस श्लोक के माध्यम से मैं अपने सद्गुरु महाराज जो ज्ञान व प्रकाश के कुंज थे, एक पावन संत थे, शैवइज़म के महान अनुभवी महान महात्मा थे, शैवी ग्रंथों के पूर्ण ज्ञाता थे तथा अपने शिष्यों के लिये सदा भगवान शिव का आशितोष रूप थे, कल्याणकारी थे, साक्षात् शंकर थे, को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

"जय गुरुदेव"

ऐ० के० जी०

हर-हर महादेव

नम्र निवेदन

आत्मज्ञान की प्राप्ति चाहने वाले साधकों की सेवा में निवेदन है कि वे केवल तत्व का अनुभव करने के उद्देश्य से ही इस पुस्तक का अध्ययन करें और सीखने तथा सिखाने के लिए नहीं। ऐसा करने से ही वे ईश्वर कृपा से इस पुस्तक का लाभ उठा सकेंगे।

कश्मीरी पंडितों से विशेषतर एक निवेदन है कि वे अपने बच्चों को अपने संस्कारों से ज्ञात कराएं ताकि इस बिखरे और बिछड़ेपन में भी हम अपनी सभ्यता को बनाकर रख सकें।

—लेखक

श्री अवतार जी गंजू हमारे प्रातः स्मरणीय गुरु महाराज श्री ईश्वर-स्वरूप जी के कृपा पात्र शिष्य हैं। इन्होंने अपनी सहज बुद्धि का आश्रय लेकर सरल शब्दों में गुरु भाइयों व गुरुबहनों के हितार्थ इस छोटी-सी किन्तु हित-प्रद पुस्तिका को छपवाया है। इसमें गुरुवर्य द्वारा कहे गये कतिपय उपदेशों का संकलन करके पुस्तक की शोभा को द्विगुणित किया है। इसमें कई कथानकों का वर्णन किया है, जो प्रायः ही किन्हीं को ज्ञात है। आशा है यह पुस्तक, जन-साधारण को लाभान्वित करेगी। ऐसा होगा तो लेखक का प्रयास भी फलीभूत होगा।

प्रभा देवी

१ अप्रैल १९९८

सरिता विहार।

दिल्ली।

विषय सूची

विषय *पृष्ठ संख्या*

श्री गुरवे नमः।

'वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभं,
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा।

एक प्रयास

इस छोटी-सी पुस्तक में प्रयास किया गया है कि हिन्दू धर्म में आस्था रखने वाला इस पुस्तक के माध्यम से विधि अनुसार साधना करने का प्रयास कर सके।

धर्म का अर्थ क्या है ?

धर्म का अर्थ है धारण करने के योग्य अर्थात् जो आस्था धारण करने योग्य हो उसे धर्म कहते हैं। हमें गर्व होना चाहिए कि प्रभु की असीम कृपा से हमने हिन्दू धर्म को अपनाया है। हिन्दू धर्म सारे ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ धर्म माना गया है, और है। इस बात को बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, पण्डितों ने मान्यता दी है और हिन्दू धर्म के बड़े-बड़े महात्माओं-संतों ने इस बात को सिद्ध करके दिखाया है। धर्म को धारण करना ही केवल नहीं है बल्कि धर्म का पालन करना है नियमों के अनुसार और जो यह करता है वह धर्म की रक्षा करता है और वास्तव में धर्म उसकी रक्षा करता है।

"धर्मो रक्षति रक्षतः।"

धर्म ही प्रांत को प्रांत से जोड़ता है, भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वालों को जोड़ता है। धर्म ही मानवजाति को

एक कुटुम्ब की भांति बनाता है अर्थात् एक दूसरे के साथ संबंध दृढ़ करता है, कहा भी है–

'वसुदेव् कुटम्बकम्'

हिन्दू धर्म में आस्था रखने वाले के लिए आवश्यक है कि वह जाने वह कौन है ? वह कहां से आया ? उसका कारण क्या है ? अर्थात् आत्मज्ञान की आवश्यकता है। कारण तो जीवआत्मा का परमात्मा है। जीव आत्मा परमात्मा का अंश है। जैसे जल से तरंग उठती है पर जल से अलग नहीं है और उठकर फिर जल से मेल करती है अथवा जैसे बर्फ में पानी, बर्फ के रूप में ही है परन्तु बना पानी से और फिर पानी बनकर पानी से ही मिल जाता है। जैसे सोने से जेवर बनते हैं। जैसे सोने की अंगूठी, सोने का हार, सोने का मुकुट तो वह सब चीजें दिखने को हैं परन्तु सब वास्तव में सोना है और सोना ही इनका कारण है। इसी प्रकार आत्मा का कारण है परमात्मा।

यहां ऐसे अगर कहें कि तरंग पानी से हवा से उठी और हवा के रुक जाने पर फिर पानी में मिल गई अथवा बर्फ सर्दी की शीतलता से पानी से बनता है और गर्मी पड़ने पर फिर पानी ही बन जाता है अथवा सोने से जेवर गर्मी से पिघलाकर बनते हैं और फिर जेवर गर्मी से पिघलाकर सोना बनते हैं अर्थात् अपने–अपने कारण से मिल जाते हैं तो यह जीव आत्मा कैसे अपने कारण से मिल सकता है। मनुष्य जन्म आत्मा को 84 लाख योनियों से निकलकर ही मिलता है। तो इन 84 लाख योनियों में से मनुष्य एक ऐसा सर्वश्रेष्ठ जीव है जिसको परमात्मा ने

बुद्धि प्रदान की है अर्थात् विवेक व सोच-विचार करने की सूझ दी है। सारे जीवों में से इस बुद्धि के प्रदान करने से परमात्मा ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बनाया और साथ ही यह भी वर्णन किया गया है कि केवल मनुष्य ही परमात्मा के सामने उत्तरदायी होगा और हर प्रकार के कर्म के लिए उत्तरदायी होगा। तो जब जीवन के अंत में अपने करनी का उत्तर उस महाशक्ति के पास देना है तो मनुष्य जीवन के अंत पर जीव आत्मा के साथ कुछ पाथेय होना चाहिये जो वहां उस प्रभु के सामने उत्तर दे। जीव साथ क्या ले जाता है ? अरे जीव जब जन्म लेता है तो एक तो रोता हुआ आता है और खाली हाथ होता है। यह तो एक प्रमाणित सत्य है और जब मरता है तो देह जलाया जाता है और राख की ढेरी बन जाता है अर्थात् जो उसने यहां कमाया, बनाया वह सब यहां ही रह गया, कुछ भी साथ नहीं ले गया। तो मनुष्य का शरीर जल गया, परन्तु आत्मा तो मरती नहीं, जलती नहीं, गीला नहीं होती, सूख नहीं जाती जैसे कि स्वयं भगवान ने गीताजी में अर्जुन देव को कहा :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहित पावक :।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

(अध्याय २-२३)

आत्मा शाश्वत, सर्वव्यापी, अविकारी, स्थिर तथा सदा एक-सा रहने वाली है। जो चोला (शरीर) छोड़ जाता है और अपने कर्मों के अनुसार परमात्मा की अनुमति से

भावी जीवन का कर्म भोगता है। तो वास्तव में आत्मा अपने साथ कर्म जो मनुष्य के द्वारा जन्म लेने के पश्चात् किये हैं साथ ले जाता है—उस अदालत में जो सबसे बड़ी अदालत है और जहां राजाओं का राजा, पंडितों का पंडित, ज्ञानियों का ज्ञानी, निर्णय देने वालों का निर्णय सुनाने वाला बैठा है और उसके सामने हिसाब देना है। तो यहां पर कहा गया है जैसी करनी वैसी भरनी। जैसा बोओगे वैसा पाओगे। तो यह कर्मों की थैली साथ ले जानी है और हिसाब देना है उस महाशक्ति के पास। सो थैली भरी हुई होनी चाहिए, अच्छे कर्मों से, निष्काम कर्मों से, भगवत अर्पण कर्मों से, भगवत प्राप्ति के लिए किये हुए कर्मों से, भगवत भक्ति के कर्मों से, भगवान के भक्तों के लिये किये हुए कर्मों से, साधु-संतों की सेवा के कर्मों से, श्रद्धा सहित दान दिये हुए कर्मों से, श्रद्धा सहित साधना किये हुए कर्मों से और अच्छे कर्मों से इत्यादि-इत्यादि ताकि इस जीवात्मा को वहां उस महाशक्ति के सामने लज्जित न होना पड़े—यह सुनना न पड़े कि इतना दुलर्भ जीवन अर्थात् मनुष्य जीवन मिलने पर भी तुमने खोया ही है और फिर वापस कौन-सी योनि में आना पड़े। तो यह सब न सुनने के लिये मनुष्य को अच्छे से अच्छे कर्म करने चाहिये। तो मरने के बाद आत्मा को शान्ति प्रदान कराना मनुष्य के अपने हाथ में है। अच्छा करेगा, अच्छा बरतेगा, अच्छा बोलेगा, अच्छा देखेगा तथा अच्छे से अच्छा करके चला जाये तो आत्मा की गति ठीक होगी। बुरा करेगा तो आत्मा की गति वहां बुरी

होगी। जीव अपने आप अपना शत्रु भी है और अपना मित्र भी है। गीताजी में स्पष्ट कहा है—

भगवान अर्जुन को अध्याय—६, श्लोक ५ में कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैवरिपुरात्मनः।।

अर्थ : मनुष्य को चाहिये कि वह अपने द्वारा अपने आपका संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने आपको अधोगति में न पहुंचावे, क्योंकि (यह) जीवात्मा आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। इसमें अपने मन की सहायता लेनी आवश्यक है।

कश्मीर में एक महान आत्मा संत ललेश्वरी हुई हैं। उन्होंने कश्मीरी में श्रुक कहा है जिसको नीचे अर्थ सहित लिखे जाने का प्रयास है :

'आयस वते गयस न वते
सुमन स्वथि मंज लूसुम दोह
चंदस वुछम तै हार न अथे,
नावतारस दिम क्या ब।

अर्थ : मैं जिस उत्तम रास्ते से आई उस रास्ते से गई नहीं, तो जब मैं उस पार जाने को थी तो उस समय किनारे पहुंचते ही दिन अस्त हुआ और अब पार करना चाहा तो पार करने के लिए जेब (शरीर) में झांका तो पाया एक मात्र (शिव नाम) नहीं तो अब क्या दूं पार ले जाने वाले को।

तात्पर्य यह कि यह सर्वश्रेष्ठ जन्म मिलने पर समय

व्यर्थ मत हाथ से जाने दें, साधना करें, अच्छे से अच्छा कर्म करें, नियत कर्म करें, पराये का कभी बुरा मत चाहें। यह शरीर एक क्षेत्र है इसमें सुख रूपी बीज बोने से सुख पाओगे, प्रयास करें सुख रूपी बीज बोने के। एक उत्तम बात कही गई है कि—

अपने अवगुण देखो,
दूसरे के गुण देखो।

तो यह उत्तम क्यों है। अगर अपना अवगुण देखें तो मनुष्य में नम्रता भाव आता है और वह सुधार ला सकता है अपने कर्मों में और दूसरे के गुण देखें तो फिर भी अपने आप में सुधार ला सकता है सगुण सीखकर। तो यह उत्तम बात याद रखने का प्रयास करने से कर्म करने में सुधार आ सकता है और उस थैली में अच्छा कर्म अंकुरित हो सकता है जो मरण उपरांत साथ ले जानी है। सदैव भगवान से यह प्रार्थना करें—

तुम्हारी चाही में प्रभो, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख नादान।।



ॐ साधना कैसे ?

सर्वप्रथम आसन बिछाना, आसन न अति ऊंचा न अति नीचा हो और आसन सुथरा साफ और केवल पूजा के लिए अलग से रखा जाना चाहिये। आसन ऊनी, मृगचर्म, पट्टू, कुशा का हो तो उत्तम माना गया है।

आसन पर बैठकर साधक पूर्व की तरफ मुंह करके पदम आसन लगावे और मन को एकाग्र करके आंखें बन्द करके अपने इष्टदेवं का ध्यान करना आरंभ करे। साधक से निवेदन है कि वह कोई मंत्र जपने से पहले या किसी भी पूजा से पहले महागणेश का ध्यान करे और पढ़े।

ॐ शुकलाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजं,
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नो पशान्तये।
अभिप्रेतार्थं सिदयर्थं पूजितोयः सुरैरपि,
सर्वविघ्नच्छिदेतस्मै श्री गणाधिपतये नमः।।

इसके बाद शान्त मन से अपने-आपको तीर-कमान की तरह आसन पर बैठे हुए अपने गुरु महाराज का ध्यान करे और पढ़े :

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरु साक्षान्महेश्वरः।
गुरुरेव जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

तत्पश्चात् अपने इष्टदेव का ध्यान एकाग्र मन से,

स्थिर मन से और सांसारिक व्यवहार को भूलकर केवल इष्टदेव का चिन्तन करते हुए पढ़े–

ॐ कर्पूर गौरं करुणावतारं, संसार–सारं भुजगेन्द्र हारम्।
सदा वसन्तं हृदयार्बिन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि।।

तत्पश्चात् अपने गुरु के दिए हुए मंत्र को जपना शुरू करे। तो मंत्र जपते समय मन सावधान, शान्त, स्थिर रखना चाहिये। मंत्र जपते समय केवल अपने इष्ट का ध्यान और अपने गुरु का ध्यान करे।

साधक की साधना के प्रयास को सफल बनाने के लिए अथवा दृढ़ता लाने के लिए गीताजी के यह श्लोक प्रमाण हैं–

(अध्याय ६ श्लोक ११, १२, १३, १४, १५)

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोतरम।।
तत्रैकाग्रंमनः कृत्वा यतचितेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वंदिशश्चानवलोकयन।।
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः।।
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।

(११ से १५ तक अर्थ पर ध्यान दें)

योग अभ्यास के लिए शुद्ध, स्वच्छ, साफ (स्थान) भूमि में कुशा, मृगछाला, वस्त्र का न अति ऊंचा न अति नीचा आसन बिछाकर अथवा स्थिर स्थापन करके, उस आसन पर दृढ़तापूर्वक बैठकर अपने मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को (सांसारिक बंधनों एवं व्यवहार को भूलकर) वश में करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे, जिसके लिये विधि इस प्रकार कही गई है कि काया (शरीर) सिर और ग्रीवा तथा गर्दन को शान्त और अचल बनाकर अथवा धारण किये हुए दृढ़ होकर सीधा रखे और नाक के अगले सिरे पर दृष्टि लगाए किसी और दिशा की ओर न देखते हुए और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थिर रहकर भयरहित, भली-भांति शान्त अन्तःकरण वाला, सावधान होकर मन को वश में करके परमात्मा के ध्यान में शान्त चित्त बनकर प्रभु परायण हुआ स्थित होवे और इस प्रकार आत्मा को निरंतर प्रभु के स्वरूप में लगाता हुआ स्वतंत्र मनवाला साधक (योगी) उस अवस्था को प्राप्त करता है जो अवस्था सतचित आनन्द स्वरूप की प्राप्ति से होती है। अर्थात् उस योग के साधक को जगत के अंत होने पर भगवत धाम की प्राप्ति होती है।

यहां बीच में ब्रह्मचर्य के व्रत का वर्णन हुआ है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि केवल ब्रह्मचारी ही अभ्यास कर सकता है।

गृहस्थ ब्रह्मचारी वह है जो केवल एक पत्नीव्रत है। वह भी ब्रह्मचारी ही कहलाता है। वह अपने गृहस्थ धर्म

को भी प्रभु के कहे हुए नियमों के अनुसार चलाये और ऊपर कही हुई विधि के अनुसार साधना भी करे तो वह योगी कहलाता है।

गृहस्थी का धर्म है, वह अपने परिवार को हर प्रकार से प्रसन्न रखे किन्तु पाप की कमाई से नहीं—जो मानव पाप करता है वह अपने लिये करता है और पुण्य करता है तो वह भी अपने कल्याण के लिए ही करता है। सच तो यह है अपने किए हुए कर्मों का कोई भी भागीदार नहीं होता।

यहां परिवार (गृहस्थ) का प्रसंग आया तो आवश्यक है कि यह देखें कि मनुष्य के कर्तव्य गृहस्थ के लिए क्या हैं और जो भी मनुष्य जन्म लेता है उसका कर्तव्य क्या है ?

सर्वप्रथम जन्मदाता की पूजा व मानता। तो जन्मदाता कौन है ? वैसे जन्मदाता सबका भगवान है, परमात्मा है परन्तु इस सांसारिक प्रकृति में जन्मदाता उसके माता-पिता हैं सो अपने माता-पिता को भगवान के समान समझना चाहिए। यह जीव-आत्मा का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। माता-पिता जीवित भगवान हैं उनकी सेवा जिसने की उसने शिव-शक्ति की सेवा की, माता-पिता को जिसने प्रसन्न रखा उसने प्रभु को प्रसन्न किया और माता-पिता का आशीर्वाद जिसके साथ है उसके साथ प्रभु का आशीर्वाद है।

शिवपुराण में वर्णन किया गया है कि ब्रह्मा जी ने एक समय नारदजी के पूछने पर नारदजी को शिव-शिवा कथा सुनाते हुए कहा कि शिवलोक में गणेशजी और

कार्तिकेय बाल-लीला कर रहे थे और माता-पिता आनन्द ले रहे थे। यह लीलाएं देखते-देखते उनका पुत्र स्नेह भी बढ़ गया। बाल अवस्था के पश्चात् दोनों भ्राता युवा अवस्था में पहुंच गए। तो जब दोनों का पूर्ण यौवन आया तो दोनों शिव-शिवा एकांत में बात करने लगे। अब इन दोनों का विवाह भी होना चाहिये तो यह उनके सोचते-सोचते दोनों भ्राताओं के मन में भी शादी का विचार आ गया। तो दोनों ऊंचे स्वर में बोलने लगे कि पहले मेरी शादी करो, पहले मेरी शादी करो। इसे देख और सुनकर शिवजी और माता पार्वती गहरे सोच में पड़े कि क्या किया जाये। तो इतने में देवाधिदेव महादेव ने दोनों को अपने समीप बुलाया और कहा—ठीक है तुम दोनों पृथ्वी के गिर्द सात चक्कर लगाकर वापस आ जाओ। सबसे पहले जो पहुंचता है उसकी शादी पहले होगी। कार्तिकेय जी यह सुनकर अपने वाहन हंस पर चढ़कर चल पड़े। परन्तु गणेशजी रुक गए और सोचने लगे कि यह मेरे वश की बात नहीं है। एक तो मैं चल नहीं सकूंगा, दूसरा सवारी मूषक की है तो मुकाबला जीतना आसान नहीं है। उन्होंने बुद्धि से काम लिया और दोनों माता तथा पिता से निवदेन किया कि वह आसन ग्रहण करें, मैं आपकी पूजा करना चाहता हूं। यह सुनकर दोनों माता-पिता आसन पर बैठे और गणेशजी ने विधिपूर्वक पूजा आरम्भ की और पूजा समाप्ति के पश्चात् तुरन्त सात परिक्रमा देने शुरू किये और नम्रतापूर्वक प्रणाम करते-करते सात पूर्ण कर लिये और तत्पश्चात् उनके

सामने आकर बैठ गये और निवेदन किया कि मेरी शादी की जाये। इस पर पिताश्री ने बोला—पर तुमने परिक्रमा तो करी नहीं तो शादी कैसे होगी। गणेशजी ने उत्तर दिया—पिताजी मैंने तो सात परिक्रमा लगा दीं साथ ही कई तीर्थ भी किये हैं तो पिताश्री ने कहा—वह कैसे ? इस पर गणेशजी ने उत्तर दिया—मैंने वही किया जो शास्त्रों में, वेदों में कहा गया है कि माता-पिता भगवान होते हैं और माता-पिता की पूजा कई तीर्थों की पूजा के समान है तो आप तो स्वयं पूजनीय हो, सब जानने वाले हो या तो शास्त्रों व वेदों का खण्डन करें या तो मेरे करे हुए को सच ठहराकर मेरी शादी करें। इस पर माता ने कहा—बुद्धिमान गणेश ठीक कह रहा है कि इसने अपने माता-पिता की पूजा भक्ति से करके सात परिक्रमा भी की सो इसने सारे ब्रह्माण्ड के सात चक्कर लगाये हैं पिताश्री तो जानते ही थे। तुरन्त कह दिया कि गणेशजी की शादी पहले होगी तो गणेशजी की शादी सिद्धि और बुद्धि दो कन्याओं से हुई। जब तक गणेशजी की दो पत्नियों से दो पुत्र होते हैं तब तक कार्तिकेय जी भी आते हैं और यह सारा हाल सुनकर शिवधाम छोड़कर क्रौञ्चपर्वत पर चले जाते हैं और कुंवारे रहते हैं। तब से उनका कुमारत्व कुंवारापन प्रसिद्ध हो गया और कुमार कार्तिकेय नाम चला आ रहा है।

इसी प्रकार रामायण में कहा गया है कि मेघनाद (रावण का पुत्र) जब युद्ध करने रामजी से युद्ध भूमि में चला जाता है, तो उसके सारे अस्त्र-शस्त्र श्रीराम के

आशीर्वाद से पूर्ण लक्ष्मणजी के बाणों के सामने हार जाते हैं, तो उसको ज्ञात होता है कि वह किसी साधारण मनुष्य से युद्ध नहीं कर रहा है, सो वह युद्ध भूमि छोड़कर अपने पिता को समझाने आता है, कि श्रीराम के साथ युद्ध करना बंद करें क्योंकि 'वह' कोई साधारण मानव नहीं हैं बल्कि साक्षात् भगवान विष्णु के अवतार हैं, तो उनके साथ युद्ध करना उचित नहीं है। परन्तु रावण ने उसकी एक न मानी और अपने पुत्र को कायर, दुर्बल और पितृ विरोधी कहा। इस पर मेघनाद ने पिता से कहा सब-कुछ कहिये पिताजी परन्तु पितृ विरोधी और कायर न कहिये। इस पर मेघनाद, पिता से कहता है कि यदि उसे इस समय यह ज्ञात भी है कि वह भगवान से युद्ध करने जा रहा है और उसका मरना निश्चित है तो भी वह पिता की आज्ञा का पालन करेगा और युद्ध भूमि में युद्ध करने माता से आशीर्वाद लेकर चला जाता है। और कहता है कि यदि वह पिता की आज्ञा अस्वीकार करता है, तो भगवान भी उसको अपने पास नहीं आने देंगे। सो उसका पहला कर्तव्य है कि वह पिता की आज्ञा का सुहृदय पालन करे। तत्पश्चात् युद्ध करने जाता है जहां वह लक्ष्मणजी के हाथों मारा जाता है। यह है शास्त्रों, पुराणों और हिन्दू धर्म में माता-पिता की महिमा। माता-पिता जीव-आत्मा के प्रत्यक्ष रूप में भगवान हैं। जिनके सिर पर माता-पिता का साया है वह भाग्यवान हैं और जो इनकी सेवा प्रसन्न होकर करता है वह योगी है।

यहां मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि मैं अपने पिताजी

तथा माताजी जो मेरे लिये शिवशक्ति का स्वरूप थे और रहेंगे, के बारे में गागर में सागर भरने के बराबर चंद शब्दों में उनको श्रद्धांजलि अर्पित करूं।



॥ मातृ देवो भव ॥



मेरी माताजी श्रीमती कमलावती गंजू।

मेरी माताश्री प्रभु में अंधविश्वास रखने वाली और

अपनी भक्ति व श्रद्धा से प्रभु से सब–कुछ मनोवांछित पाने वाली योगभ्रष्ट आत्मा थीं। अपने गृहस्थ को धर्म अनुसार चलाया और बच्चों को ऐसे पाला, बड़ा किया, परवरिश दी जिससे वह सामाजिक तथा परमार्थिक आदर्शों व कर्तव्यों को समझ सके। उन्होंने प्रभु में श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त किया। जैसे गीताजी में भगवान ने कहा है–

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

(अध्याय–४ श्लोक ३९)

अर्थ : श्रद्धालु व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करता है और यदि वह इन्द्रियों को वश में कर लेता है तो उसे दिव्य शान्ति शीघ्र ही प्राप्त होती है। प्रभु में दृढ़ विश्वास रखने वाला व्यक्ति ही इस तरह का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।



॥ पितृ देवो भव ॥



मेरे पिताजी पं. शुकदेवजी गंजू।

मेरे पिताश्री सांसारिक तथा परमार्थिक कर्मों को धर्म

अनुसार करने वाले महान आत्मा थे। वह कर्मयोग में विश्वास रखते और शास्त्रों व धार्मिक पुस्तकों का विशेषतर गीताजी का पूर्णरूप से ज्ञात रखते थे। वह एक सफल व्यापारी, सामाजिक कार्यकर्ता तथा धर्म अनुसार कर्म करने वाले एक योगभ्रष्ट आत्मा थे। उनके जीवन पर पूर्णरूप से निम्नलिखित गीताजी का श्लोक प्रकाश डालता है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

(गीताजी अध्याय–६ श्लोक–४१)

वे अपने बच्चों के लिए गुणों से परिपूर्ण एक पिता और दूरदर्शी इंसान थे। बच्चों को हर प्रकार परिपूर्ण बनाया और अपने जीवन के अन्तिम बीस साल भगवत भजन व धर्मपथ पर चलते व्यतीत करके अंतर्ध्यान हो गये।

तो बात हो रही है साधना की। हां तो यह साधक तो अब मंत्र जपना शुरू कर रहा है। यहां याद रहे कि साधक के लिए और प्रत्येक जीव–आत्मा के लिए एक इष्टदेव, एक गुरु तथा एक मंत्र होना आवश्यक है और न दूसरे इष्ट, न दूसरे गुरु और न दूसरे मंत्र को अपने मन, बुद्धि में स्थान देना चाहिए।



सत्संग की महिमा

सत्संग क्या है ? कई लोग कहते हैं सत्संग होता है संतों का संग पाए तो कई कहते हैं सत्संग होता है दो, चार या दस मूर्तियां आपस में प्रभु की लीला पर विचार करें। भजन करें। कई कहते हैं किसी अच्छे संत, अच्छे पंडित महात्मा के प्रवचन सुनने को सत्संग कहते हैं।

वास्तव में सत्संग सत्य का संग करना है, तो सत्य केवल प्रभु है। तो प्रभु का संघ करना इतना सहज नहीं सो इसके लिए ज्ञानी महात्मा (संत) से प्रवचन सुनना आवश्यक है।

अच्छा संत मिलना अति दुर्लभ है परन्तु मनुष्य के मन में चाह हो अच्छी संगत की तो पुण्य के उदय होने पर अच्छा संत मिलता है। वेदों और शास्त्रों में सत्संग को अति प्रमाणित कहा गया है क्योंकि सत्संग मनुष्य को ज्ञानमार्ग पर ले जाता है और अच्छे कर्मों में रुचि बढ़ाता है।

सत्संग की बहुत ही महिमा है। कहा जाता है कि एक समय श्री विश्वामित्र जी ने गुरु वशिष्ठ जी को अपने यहां भोजन करने का निमंत्रण दिया तो निर्धारित समय और तिथि के अनुसार गुरु वशिष्ठ उनके आश्रम में पधारे। भोजन परोसा गया और ग्रहण किया गया तो भोजन की समाप्ति पर विश्वामित्र जी को ध्यान आया कि अब तो

गुरु वशिष्ठ जी को दक्षिणा देने का समय है तो सोच में पड़ गये कि दक्षिणा में क्या दिया जाना उत्तम रहेगा। तो विचार करके यह प्रयोजन निकाला। कोई उत्तम वस्तु देना भी ठीक नहीं रहेगा। मैंने तो चार दिशाओं की तपस्या की है तो एक दिशा की तपस्या फल सहित इनको दक्षिणा में दे दूंगा। ऐसा ही करके गुरु वशिष्ठ जी को विदा करने लगे कि वशिष्ठ जी ने भी निमंत्रण दिया कि अब आप भी मेरे यहां भोजन पर पधारें। विश्वामित्र जी हां करके निर्धारित तिथि और समय पर उनके आश्रम में पधारे। भोजन परोसा गया, ग्रहण किया गया और अब दक्षिणा का समय आया तो गुरु वशिष्ठ ने सत्संग का थोड़ा-सा फल दक्षिणा में दिया। विश्वामित्र जी सोच में पड़ गये कि यह तो क्या दक्षिणा दी वशिष्ठ जी ने, मैंने तो एक दिशा की तपस्या इनको फल सहित दी और इन्होंने तो चंद मूर्तियों के साथ सत्संग करने का थोड़ा-सा फल दिया।

इतने में गुरु वशिष्ठ जी ने कहा—विश्वामित्र जी, क्या आपके मन में यह विचार उठा है कि दक्षिणा में आपने मुझे ज्यादा फल दिया है और मेरा कम है तो विश्वामित्र ने सत्य को स्वीकार करते हुए कहा हाँ, इस पर वशिष्ठ जी बोले कि ब्रह्माजी के पास चलते हैं और उनसे पूछते हैं कि दोनों दक्षिणाओं में किसका ज्यादा फल महान है। फिर दोनों चले ब्रह्मलोक की ओर तो वहां पहुंचकर ब्रह्मदेवाय नमः कहकर उनके सामने अपनी समस्या रख दी। ब्रह्माजी विचार करने लगे कि अगर मैं

कुछ कहूं तो दोनों में से एक कहेगा कि पक्षपात हुआ सो इनको विष्णु जी के पास भेज दूं तो ब्रह्मा जी के कहने पर दोनों विष्णुलोक की ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर नमो नारायण करके अपनी समस्या से उनको अवगत कराया तो उनके मन में भी यही विचार आया सो बोल पड़े कि इसका समाधान शिवजी के पास ही हो सकता है। तब फिर वे शिवलोक की ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर ॐ नमः शिवाय कहकर प्रणाम करके अपनी समस्या उनके सामने रखी और विनती की कि इसका निर्णय करें तो भोलेनाथ जी के मन में भी यही बात आई कि इन दोनों में से एक अवश्य कहेगा कि पक्षपात हुआ है, तो अच्छा है इनको शेषभगवान के पास भेजें, वह समाधान निकालेंगे, तो दोनों शेष भगवान के पास चले गए। वहां पहुंचने पर नमस्कार करके उनके सामने अपनी समस्या रख दी। शेष भगवान ने बोला—मैं तो अवश्य बोलूंगा परन्तु मेरे सिर पर बोझा है, यह कोई संभाले तो मैं आपके साथ बात करूंगा। शेष भगवान के सिर पर धरती (पृथ्वी) रहती है तो विश्वामित्र जी ने बोला—ठीक है मैं इसे संभालता हूं। आप हमारी समस्या का समाधान बोलो। विश्वामित्र ने अपनी तीन दिशाओं की तपस्या के फल में से एक का फल लगाया परन्तु धरती टिकी नहीं, फिर दूसरी दिशा का लगाया कुछ नहीं हुआ, फिर तीसरी दिशा का भी लगाया फिर भी धरती डगमगाई, इस पर परेशान होने पर गुरु वशिष्ठ ने कहा कि आपने मुझे एक दिशा का फल दिया है यह भी लो, और वह भी लगाओ परन्तु धरती फिर भी नहीं ठहरी। अब गुरु वशिष्ठ ने बोला—आप अपनी चारों दिशाओं की तपस्या का फल वापस ले लो और फिर वह संत्संग का जो थोड़ा फल मैंने आपको दिया

है वह लगाओ। इस पर विश्वामित्र ने ऐसा ही किया, धरती टिक गई केवल थोड़े-से सत्संग के फल से तो विश्वामित्र जी लज्जित हुए और कहा कि वास्तव में सत्संग की बहुत महिमा है।

सत्संग सुनने से मनुष्य धन्य होता है पर सुनने वाला श्रद्धावान हो और सतोगुणी बुद्धि रखता हो। सत्संग सांसारिक लोभ के बिना सुनना चाहिये तो मनुष्य कृतार्थ होता है।

राजा परीक्षत एकांत में रहकर आत्म दृष्टि के साथ सुखदेव मुनि का सत्संग सुन रहे थे और सुनते-सुनते ही उनको भगवान का ज्ञान हुआ। सत्संग मनुष्य के लिए वह भोजन है जिससे वह अपने आपको प्रसन्न और नये-नये विचारों से निर्मल बना हुआ अनुभव करता है। सत्संग दैवी-भोजन है और इससे मोह समाप्त हो जाता है। और मनुष्य अपने आप साधना में लगता है।

इस बारे में निम्नलिखित दोहे निवेदित हैं :

(1) एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध।।

(2) कबीरा संगति साधु की, नितप्रित कीजे जाय।
दुरगति दूर बहावसी, देसी सुगति बताय।।

तो सत्संग अच्छे साधु-महात्माओं का सुनना, उनके प्रवचन सुनना मनुष्य के लिए बहुत ही लाभदायक है। अतः सत्संग बहुत महान है।



गीताजी का महत्व

श्रीमद्भगवत गीता हिन्दुओं का वह अति पवित्र और बहुमूल्य ग्रंथ है जिसे स्वयं भगवान ने अपने मुखारबिन्द से प्राणियों के उद्धार के लिये कहा है। गीताजी सब वेदों, उपनिषदों, पुराणों का मन्थन करके निकला हुआ सार है और इस नाचीज को लिखने में कोई झिझक नहीं कि गीताजी एक हिन्दू को पूर्ण हिन्दू बनाने की प्रतिष्ठा के समान है। गीताजी के पठन से, श्रवण से, मनन से और गीताजी के कहे हुए के अनुसार कर्म करने से एक जीव मनुष्य बन सकता है। वह गलत और सही में फर्क कर सकता है। उसको यह ज्ञान आ सकता है कि संसार में सारे जीव–आत्मां परमात्मा के ही अंश हैं और वह ज्ञान सात्विक है।

प्रमाणः –

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।

(गीताजी अध्याय १८ श्लोक – २०)

अर्थ : जिस ज्ञान से मनुष्य अनन्त रूपों में विभक्त सारे जीवों में एक ही अविभक्त आध्यात्मिक प्रकृति को देखता है वह ज्ञान सात्विक है।

उसको यह ज्ञान होगा कि संसार में कोई भी धनवान

नहीं है और अगर कोई धनवान है, बड़ा है तो वह केवल एक प्रभु है। भगवान ही सबको देने वाला है और इस प्रकृति द्वारा रचित संसार में न धनवान का धन और न गरीब की लाचारी ही स्थिर है। अगर स्थिर है तो भगवान का नाम है। भगवान था, भगवान है, भगवान रहेगा, यह गीताजी के अध्ययन से ज्ञात होता है और सिद्ध होता है। यह हर धर्म में माना गया है और प्रमाणित है। जीव–आत्मा को उस स्थिर रहने वाले का नाम जपने का अभ्यास करना चाहिये, मनुष्य को सभी प्रिय चीजों से प्रिय प्रभु को बनाना चाहिये ताकि वह अन्त समय उसका नाम अपने मुंह से लेकर ही देह त्याग दे। यह तो सत्य है कि जो सबसे प्रिय हो उसी की आकांक्षा हर समय और मरने के समय रहती है। तो सांसारिक दृष्टि में जितनी भी वस्तु हैं, जीव हैं, जो मनुष्य की दृष्टि में आती हैं वह सब नाशवान हैं। हर जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है। और स्वयं मनुष्य का शरीर नाशवान है।

प्रमाण (गीताजी अध्याय २ श्लोक–२७)

जात्सय हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृत्स्य च।
तस्मादपुरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

तो अगर स्थिर है कोई तो वह केवल परमात्मा है, तो जीव के अंतिम समय पर परमात्मा का नाम केवल उसी मुख से गाया जा सकता है जिसने जीवन भर इसका अभ्यास किया हो, अभ्यास से ही मनुष्य पूर्ण रूप से भगवतनाम हर समय ले सकता है और अपना

अन्त शीतल, शान्त, गुणातीत, और उत्तम बना सकता है अथवा जीव- आत्मा उत्तम गति को प्राप्त हो सकता है।

श्रीमद्भागवतगीता में पूर्ण वर्णन है इन बातों का और यहां संक्षेप में एक श्लोक इसका प्रमाण है :

अन्तकाले च मामेव समरन्मुक्तवा कलेवरम।
यः प्रयाति् स मभ्दावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

(गीताजी अध्याय-८ श्लोक ५)

अर्थात् जो मनुष्य अन्त समय में भगवान को स्मरण करता है और इस (शरीर) को त्याग कर जाता है, वह साक्षात् परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें कोई भी संशय नहीं है। तो अंतकाल का सुधार या उद्धार करना जीव के अपने हाथ में है। वह जितना अभ्यास करे उतना अंत समय में उसका सत्य फल प्राप्त होता है। भगवान गीताजी में एक सुगम उपाय भगवत प्राप्ति का बताते हैं। कहते हैं—कि जो मनुष्य मेरे एक अक्षर नाम वाला मंत्र जपते-जपते प्राण त्याग करता है वह प्रभु की गति को प्राप्त होता है। इसके लिए निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है और यह एक अक्षर नाम मंत्र क्या है ? वह तो परमात्मा का ही नाम ॐ है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम।।

(गीताजी अध्याय-८ श्लोक १३)

भगवान, अर्जुन को कहते हैं कि जो मनुष्य 'ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और अर्थस्वरूप मेरे को चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त होता है। तो भगवान जीव-आत्मा को इस श्लोक द्वारा आश्वासर्न देते हैं कि अन्त समय में जो भी प्राणी परमात्मा का नाम 'ॐ' का स्मरण करे वह प्रभु को प्राप्त होता है।

कहा जाता है कि प्राण त्याग के पश्चात् आत्मा को यमदूत ले जाते हैं। जो जीव-आत्मा भगवत भक्त हो और ॐ या ॐ नमः शिवाय मंत्र का जाप करता हो उसे यह दूत देवता दिखते हैं, शिवगण दिखते हैं और इसके विपरीत कर्म वाले को यमदूत दिखाई देते हैं। यह निम्नलिखित कथन से भी सिद्ध होता है।

भगवान कृष्ण के जन्म के उपरान्त कंस को भगवान विष्णु, नारायण, श्रीहरि का रूप भी महाकाल का रूप दिखाई दिया और भयभीत होकर भगवान से कहने लगा कि उसके सामने से दूर हो जाओ, तुम महाकाल हो। सो यह कंस के बुरे कर्म थे और अधर्म के मार्ग पर चलने का फल था। कंस के अधर्म का मार्ग था काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और असत्य, यही कारण था कि उसकी बुद्धि का संतुलन बिगड़ गया था।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य (जीव-आत्मा) के सबसे बड़े शत्रु काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और असत्य हैं जो

जीव को परमात्मा से दूर करते हैं या भगवत भजन में, भगवत पूजन में, भक्ति में बाधक बनते हैं। यहां तक कि एक साधक की भी साधना में बाधा बनते हैं तो गीताजी ही एक साधन है इन पाप कर्मों से मुक्ति का। गीताजी के पठन से, श्रवण से, मनन से जीव-आत्मा इन इन्द्रियों पर विजय पा सकता है। गीताजी में बड़ा विस्तारपूर्वक कहा गया है कि इन इन्द्रियों को कैसे जीता जा सकता है और इनके न जीतने से मनुष्य की क्या गति होती है।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।
(गीताजी अध्याय-१६ श्लोक १८, १९)

अर्थ :-भगवान कहते हैं कि अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध आदि के परायण हुआ पुरुष और दूसरों की निन्दा करने वाला जीव परमात्मा से द्वेष करने वाला है ऐसे उन पापाचारी और क्रूरकर्मी मनुष्यों को मैं संसार में बार-बार आसुरी नीच योनियों में गिराता हूं और फिर उन्हीं योनियों में उत्पन्न करता हूं।

भगवान कहते हैं-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत।।
(गीताजी अध्याय-१६ श्लोक २१)

अर्थ : काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकार के नरक के द्वार हैं जो आत्मा को अधोगति में, नरक में डालने वाले हैं। इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए क्योंकि ये आत्मा का हनन इस हद तक कर देते हैं कि इस भवबन्धन से मुक्ति की संभावना नहीं रहती। मनुष्य को मानव जीवन के शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ अहंकार से अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। जो व्यक्ति जितना ही इनसे मुक्त होगा, उतना ही उसका जीवन शुद्ध होगा। इन चार शत्रुओं को थोड़ा-सा संक्षेप में जानने का प्रयास करें।

काम :- काम का अर्थ है इच्छा और इच्छा का दूसरा नाम है—आशा। संसार से मनुष्य को आशा रहती है और यह आशा वह देवी है कि इसकी जितनी सेवा करो उतनी बढ़ती जाती है और मानव को अपने 'कारण' की तरफ जाने नहीं देती। अथवा प्रभु की आराधना व साधना में बाधा बन जाती है। जीव-आत्मा अंश है परमात्मा का और इस अंश (आत्मा) को परमात्मा के पास वापस जाना है। परन्तु यह आशादेवी, (इच्छा-काम) के दमन करने से छोड़ने से, ही संभव है। अगर शान्ति प्राप्त करनी है और सद्‌गति प्राप्त करनी है तो कामइन्द्रिय का दमन करना है। परमात्मा की शरण में जाने के लिये यह आवश्यक है। जीव वही है जो मानव जन्म में निरंतर प्रयास करता रहे कि अपने कारण के साथ मिल जाये। एक शत्रु काम भी है जिसको छोड़ना, त्याग देना अति

आवश्यक है और जो भी कोई मनुष्य अभ्यास करता हो उसे सफलता का मार्ग मिल सकता है।

क्रोध :– क्रोध जीव आत्मा का बैरी है और बहुत भयंकर भी है। इस क्रोध के आने से अपनी ही हानि होती है और मनुष्य के विवेक का संतुलन बिगड़ता है।

भगवान कहते हैं–

क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

(गीताजी अध्याय–२ श्लोक ६३)

अर्थः–क्रोध से पूर्ण मोह हो जाता है अर्थात् इन्द्रियां नियंत्रण से बाहर हो जाती हैं जिससे स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृति के भ्रमित होने से बुद्धि, ज्ञान, शक्ति, सोच के बल का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से मनुष्य अपनी स्थिति से गिर जाता है अर्थात् उसका अधःपतन होता है। क्रोध पर नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है। एक प्रयासः–अपनी बात मनवाने की जिद्द छोड़ने से क्रोध पर नियंत्रण पाया जा सकता है और अपनी स्थिति से गिरने से बचा जा सकता है। जैसे कोई मोटरगाड़ी सड़क पर चला रहा है और अकस्मात् कोई बच्चा सामने आता है तो कार का चालक पहले ब्रेक लगा देगा और धीरे–धीरे गाड़ी को संयम में लायेगा तो इसी प्रकार मनुष्य को क्रोध आते–आते ही दबा लेना चाहिये और क्रोध करने से पहले क्रोध का मूल कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिये।

मनुष्य को व्यवहार चलाना है सो अपने आपमें सहनशीलता लानी है। सहनशीलता वह सबसे बड़ा शस्त्र है जो क्रोध को काट देता है, चूर कर देता है।

भगवान शंकर जी यज्ञ में दक्ष प्रजापति की ऊटपटांग, अपमानजनक अपने विरुद्ध और धर्म विरुद्ध बातें सुनकर भी चुप रहे। क्योंकि भगवान शंकर जी जब व्यवहार में होते हैं तो वह सहनशीलता से काम लेते हैं। यह उत्तम गुण भगवान शंकर का मनुष्य को ग्रहण करके अपने आपमें सहनशीलता लानी चाहिये जो क्रोध इन्द्रिय का दमन करने में सहायता करता है।

लोभ :—अर्थात् मोहः—मनुष्य को सांसारिक, व्यावहारिक दलदल में फंसा लेता है और फंसता ही चला जाता है। वह उस स्वरूप को भूल जाता है जो सत है और सांसारिक प्रकृति जो असत् है की ओर लग जाता है। वास्तव में असत् से हटकर सत् की ओर लगना चाहिये क्योंकि असत् का अभाव है और सत् का अभाव नहीं है। सत तत्व परमात्मा का किसी काल में अभाव नहीं है, किसी क्रिया में अभाव नहीं है, किसी भी वस्तु में अभाव नहीं है, किसी भी परिस्थिति में अभाव नहीं है, किसी भी घटना में अभाव नहीं है उसका सदा सर्वत्र अस्तिता ही अस्तिता है।

भगवान कहते हैं—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।

(गीताजी अध्याय–२ श्लोक १६)

अहंकार :–अहंकार से भगवान को सबसे अधिक चिढ़ है। अहंकारी मनुष्य कभी भगवान के समीप जा ही नहीं सकता, क्योंकि प्रभु को अहंकार से वैर है। अहंकारी मनुष्य मैं हूं, मैं करता हूं, मैंने किया, मैंने बनाया, मैं नहीं होता तो यह कार्य नहीं होता, इत्यादि सोचता रहता है।

भगवान कहते हैं–

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

(गीताजी अध्याय–३ श्लोक–२७)

वास्तव में कर्ता भगवान है जिसका ज्ञान न होने से मनुष्य में अहंकार जागता है। जैसे धुआं अग्नि के तेज को ढक लेता है वैसे ही अहंकार मनुष्य के ज्ञान को ढक लेता है, दबा लेता है।

कहा जाता है कि भक्तों में सर्वश्रेष्ठ भक्त नारदजी को माना जाता है परन्तु अहंकार जाग्रत होने पर भगवान ने उन (नारदमुनि) को भी नहीं छोड़ा। जब वह महाराजा शीलनिदि की पुत्री के स्वयंवर में भाग लेने की कामना करते हैं। किन्तु नारदजी तो प्रिय परम भक्त थे भगवान के, इसलिये उनका अहंकार दूर करके उनको पतन से बचाया। वास्तव में मनुष्य 'मैं हूं' इस प्रकार अनुभव करता है। इसमें 'मैं' तो प्रकृति का अंश है और 'हूं' चेतन का अंश है। तात्पर्य यह कि 'मैं' की 'नहीं' के साथ और 'हूं' की 'है' के साथ एकता है। वास्तव में

अगर मैं का सम्बन्ध छोड़ दें तो 'हूं' नहीं रहेगा, केवल है रहेगा। वही 'है' तत्व का स्वरूप है। मनुष्य को भूल से भी अपने में अहम् को ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि तब उसमें जड़ता, विषमता, अभाव, अशान्ति, कर्तृत्व आदि विकार आ जाते हैं। अतः मनुष्य को चाहिये अहम् को मिटाने के लिए अपने में तत्व 'है' को स्वीकार करे। क्योंकि 'है' तत्व में अहम् नहीं है और मनुष्य 'हूं' को 'है' में अर्पित करके 'वह है' मानकर सर्वव्यापी परमात्मतत्व की शरण रहे।

भगवान कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(गीताजी अध्याय-७ श्लोक १४)

तात्पर्य है कि भगवान का आश्रय लेने पर अहं सर्वथा मिट जाता है, कारण कि भगवान स्वयं शरणागत भक्त के अहम् को नाश कर देते हैं और ऐसे मनुष्य के लिए केवल आनन्द रह जाता है अर्थात् एक सत्तचित आनन्द तत्व ही रह जाता है।

भगवान कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

(गीताजी अध्याय-७ श्लोक १९)

अर्थः—अनेक जन्म-जन्मांतर के बाद जिसे सचमुच ज्ञान होता है, वह मुझको समस्त कारणों का कारण

जानकर मेरी शरण में आता है और ऐसा महात्मा अत्यंत दुलर्भ है।

ज्ञानवान ही सत्यपथ पर अपने जीवन को लगा सकता है और अपने आपको एक आदर्श बना सकता है।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।



सत्यपथ

सत्य के मार्ग को ग्रहण करना अथवा धर्म अनुकूल अपने जीवन को आदर्श बनाना, अपने-आपको सत्य के सांचे में ढालना जीव-आत्मा के लिए सत्यपथ है। सत्य ही परमात्मा है, 'सत्यं शिवं सुन्दरम', जो मनुष्य सत्य बोलता है वह सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सत्य बोलने वाले को मोक्ष का रास्ता सुगमता से मिल सकता है और झूठ बोलने वाले का पतन होता है। सत्य बोलने से मनुष्य का व्यवहार, स्वभाव, बोलचाल मधुर अथवा अच्छा रहता है। सत्य बोलने के बराबर कोई धर्म नहीं है।

झूठ बोलने के बराबर कोई पाप नहीं है। झूठ बोलने वाले की गति वही है जो काम, क्रोध, लोभ वाले की गीताजी में कही गई है, जिसका वर्णन पीछे किया गया है। सत्य बोलना आज के संसार में बहुत कठिन है परन्तु है लाभदायक। दोनों, सांसारिक व्यवहार में और परमार्थ व्यवहार में भी जो मनुष्य सत्य बोलने के बराबर कोई धर्म न मानते हुए सत्य बोले और जैसी भी स्थिति प्रदान होती है उस स्थिति में मनुष्य प्रसन्न रहे तो वह सत्य बोलने वाला स्वयं सत्य से मिल जाता है अर्थात् परमात्मा से मिल जाता है।

''सत्यं वद्ध-धर्मं चर''

सत्यपथ पर थे विदुरजी

भगवान कृष्ण ने दुर्योधन के राजभवन में जाकर भोजन करने से अच्छा सत्यपथ पर चलने वाले विदुर की कुटिया में भोजन करना पसन्द किया जहां विदुर की धर्मपत्नी तो 'भक्ति के प्रेम में मग्न प्रभु को केले का छिलका देती है और केले का फल बाहर जमीन पर गिरा देती है तो प्रभु ने उसकी भक्ति देखकर प्रसन्नचित्त होकर उन छिलकों को भी स्वीकार किया। सत्यपथ पर चलने वाला प्रभु को अत्यंत प्रिय है और प्रभु के निकट है।

श्री भगवान ने अर्जुन से कहा—कि ज्ञानवान है वह जो सत्य पथ पर अपने आपको लगावे।



कर्मयोग गीताजी में

'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणै।।
(अध्याय-३ श्लोक ५)

अर्थ :- प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति से अर्जित गुणों के अनुसार विवश होकर कर्म करना पड़ता है, अतः कोई भी एक क्षण के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता।

यह देहधारी जीवन का प्रश्न नहीं है। आत्मा तो स्वभाव से ही सदैव सक्रिय रहती है। आत्मा की अनुपस्थिति में भौतिक शरीर हिल भी नहीं सकता। यह शरीर मृत-वाहन के समान है जो आत्मा द्वारा चालित होता है, क्योंकि आत्मा सदैव गतिशील (सक्रिय) रहती है और वह एक क्षण के लिए भी नहीं रुक सकती। अतः आत्मा को प्रभु के, परमात्मा के सद्कार्य में प्रवृत्त रखना चाहिए अन्यथा वह माया द्वारा शासित कार्यों में प्रवृत्त होती रहेगी। माया के संसर्ग में आकर आत्मा भौतिक गुण प्राप्त कर लेती है और आत्मा को ऐसे आकर्षणों से शुद्ध करने के लिए अथवा दूर रखने के लिए यह आवश्यक है कि धर्म अनुकूल कर्मों में इसे संलग्न रखा जाये। कर्म वह जो आसक्ति रहित किया जाये। अतः कर्मफल में आसक्त हुए बिना मनुष्य को अपना कर्तव्य समझकर निरंतर कर्म करते रहना चाहिये क्योंकि अनासक्त होकर कर्म करने

से उसे परब्रह्म की प्राप्ति होती है। अनासक्त कर्म करना मुक्ति का मार्ग मनुष्य के लिए सहज बनाता है, मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है। निष्काम कर्म जो करता है वह भी योगी ही कहलाता है।'

भगवान कहते हैं–

कर्मणैव हि संसिद्धिमस्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।।

(गीताजी अध्याय–३ श्लोक २०)

अर्जुन को भगवान कृष्ण कहते हैं कि जनक जैसे राजाओं ने केवल नियत कर्मों के करने से ही सिद्धि प्राप्त की। अतः सामान्य जनों को शिक्षित करने की दृष्टि से तुम्हें कर्म करना चाहिए। राजा जनक सिद्ध व्यक्ति थे, अतः वे वेदानुमोदित कर्म करने के उद्देश्य से सारे नियत कर्म करते रहे। राजा जनक सीताजी के पिता तथा भगवान राम के श्वसुर थे। भगवान के महान भक्त होने के कारण उनकी स्थिति दिव्य थी, किन्तु वे मिथला के राजा थे, अतः उन्हें अपनी प्रजा को यह शिक्षा देनी थी कि कर्तव्यपालन कैसे और किस प्रकार किया जाता है। यहां यह लिखना आवश्यक बनता है कि भगवान कृष्ण तथा अर्जुन देव को कुरुक्षेत्र के युद्ध में लड़ने की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु उन्होंने जनता को यह सिखाने के लिए युद्ध किया कि जब सारे सत्परामर्श असफल हो जाते हैं तो ऐसी स्थिति में युद्ध का मार्ग अपनाना पड़ता है। कुरुक्षेत्र के युद्ध के पूर्व भगवान तक

ने युद्ध टालने के लिए प्रयास किया किन्तु जब दुर्योधन न समझा तो उन्हें युद्ध करने के सिवाय कोई भी चारा न लगा। ऐसे सत्यधर्म के लिए युद्ध करना आवश्यक था। अर्थात् यह गीताजी में सिद्ध किया गया है कि कर्म करना मनुष्य का कर्तव्य है। कर्म कौन-से करने हैं, सतकर्म, निःश्काम कर्म, भगवत् अपर्ण कर्म, शास्त्रविधि अनुसार कर्म, संत महात्मा लोगों द्वारा किये सद्कर्म, नियतकर्म ताकि मनुष्य का अपना जीवन भी सफल हो और दूसरों के लिये भी आदर्श बने।

भगवान कर्म करने के बारे में कहते हैं-

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।

(अध्याय-३ श्लोक २१)

महापुरुष जो-जो आचरण करते हैं, सामान्य व्यक्ति उसी के अनुसार करते हैं। वह अपने अनुसरणीय कार्यों से जो आदर्श प्रस्तुत करते हैं सारा विश्व उसका अनुसरण करता है।

अर्थात् सामान्य लोगों को सदैव एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो व्यावहारिक आचरण द्वारा जनता को शिक्षा दे सके, तो अगर शिक्षक धूम्रपान करता है तो वह जनता को धूम्रपान बंद करने की शिक्षा नहीं दे सकता। शिक्षा देने के पूर्व शिक्षक को ठीक-ठीक आचरण करना चाहिये। चाहे राजा हो या राज्य का प्रशासनाधिकारी, चाहे पिता हो या शिक्षक, ये सब अबोध

जनता के स्वाभाविक नेता माने जाते हैं। इन सबका अपने आश्रितों के प्रति महान उत्तरदायित्व रहता है अतः इन्हें धर्म अनुकूल कर्म करने वाले मार्ग से सुपरिचित होना चाहिए।

भगवान अपने लिए कहते हैं

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

(गीताजी अध्याय–३ श्लोक २३)

भगवान कृष्ण के लिए कोई कर्म करना आवश्यक नहीं था परन्तु वे धर्म की स्थापना के लिए अवतरित हुए थे इसलिये उनको भी कर्म करने पड़े। तो ऊपर के श्लोक में भगवान कहते हैं कि अगर मैं नियतकर्मों को सावधानीपूर्वक न करूं तो हे पार्थ ! यह निश्चित है कि सारे मनुष्य मेरे पथ का ही अनुगमन करेंगे तथा मनुष्य को स्वधर्म पालन करते हुए कर्म करने चाहिये। स्वधर्म का अर्थ है अपना धर्म, जिस धर्म में मनुष्य ने जन्म लिया है।

भगवान कहते हैं–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

(गीताजी अध्याय–३ श्लोक ३५)

अर्थ :–अपना धर्म अगर परमात्मा न करे, गुणरहित भी दिखे और दूसरे का धर्म अच्छा लगे तो भी अपने धर्म में मरना कल्याणकारी है क्योंकि दूसरा धर्म भय को

देने वाला है अर्थात् स्वधर्म पालन नियतकर्म अनुसार करना चाहिये। कर्म करना कर्तव्य है, आवश्यक है। श्री भगवान निःश्काम कर्म को महानता देते हैं। यहां तक कहते हैं कि ज्ञानयोगी और निःश्काम कर्मयोगी उनके लिए एक बराबर हैं। बल्कि निःश्काम कर्म योग अपनाने में सहज होने से मनुष्य के लिए ठीक है। तो कर्म करना धर्म है परन्तु कर्म के फल में आकांक्षा रखना अधर्म है। श्रीकृष्ण भगवान गीताजी में ऐसे कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

(गीताजी अध्याय–२ श्लोक ४७)

अनुवाद :—मनुष्य को केवल कर्म करने का अधिकार है, फल की आकांक्षा का नहीं, जो जीव फल की इच्छा, चाह रखता है वह उस इच्छा का दास (गुलाम) बन जाता है और जो इच्छा का दास बन गया वह किसी भी हद तक गिर सकता है और पतित हो जाता है और अपनी ही बिरादरी में अपमानित होता है, अर्थात् कर्म करिये पर निःश्काम और अपने–आपको कर्म के फल का कारण मत मानिये और न, कर्म न करने में कभी आसक्त होओ।

जो जीव ऐसे करता है, ऐसे समझता है वह निःश्काम कर्मयोगी है। निश्चिन्त ही निःश्काम कर्मयोगी महान है और प्रभु उसके साथ है और वह सिद्ध पुरुष बन सकता

है। निःश्काम कर्मयोगी प्रभु के समीप है और प्रभु उसके समीप है और ऐसा जीव भगवान को प्रिय है। निःश्काम कर्म करने वाला मनुष्य कितना महान है, मेरे पास ऐसे शब्द नहीं हैं कि उसकी प्रशंसा लिखूं।

हमारे शास्त्रों, वेदों अथवा गीताजी के अनुसार जो निःश्काम कर्मयोगी निःश्काम कर्म के अतिरिक्त निम्नलिखित आदर्शों को भी ग्रहण करता है वह कर्मयोगी महानयोगी है और उसको दैवी संपदा प्राप्त होती है।

1. मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना।

2. सत्य बोलना और मीठे बोलों का उपयोग अपने बोलने में करना।

3. अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना।

4. कर्म करे परन्तु कर्तापन के अभिमान का त्याग हो।

5. चित्त अर्थात् मन की चंचलता न होना।

6. किसी की भी निन्दा न करे।

7. अपने में हर एक के लिए दया रखे, वह भी बिना कारण।

8. नम्रता भाव।

9. जनता के विरुद्ध और शास्त्र के विरुद्ध जाने वाले कर्मों से दूर रहे।

10. व्यर्थ बातों का अभाव हो।

एक मशहूर कहावत है—जो प्रवचन देने वाला कहता

है वह करो और जो वह करता है उसकी तरफ मत ध्याण दो, कृपया यह पढ़कर ऐसा ही करें, ऐसा ही बरतें और लिखने वाले की ओर न देखना, न ध्यान करना कि वह ऐसा करता है या नहीं। यह मेरा सभी से नम्र निवेदन है।



लिङ्ग पूजन और उसकी महानता

'लिङ्ग' भगवान शिव का प्रतीक है और माना जाता है, यह हमारे सर्व शास्त्र, उपनिषद् और पुराण प्रमाणित करते हैं। शिवपुराण और शैवशास्त्र के अनुसार 'लिङ्ग' भगवान शिव का निराकार रूप है। शैवमत के अनुसार यह सारा संसार ही शिव का रूप है, उन परमब्रह्म परमेश्वर का रूप है जो सर्वशक्तिमान हैं जो निराकाररूप में लिङ्ग और साकार रूप में महेशवर रूप से जाने जाते हैं पहचाने जाते हैं। इस सांसारिक रूप को शिव रूप मानकर ही जो यह जपें कि

'शिव स्वरूप को नमस्कार हो।'

'जगत स्वरूप को नमस्कार हो।'

'शिव शक्ति स्वरूप को नमस्कार हो।'

वह इस प्रकार भी प्रभु को ही नमस्कार करते हैं।

अर्थात :–उस 'शिव' को नमस्कार करते हैं जो इस जगत के स्वामी हैं और यह जगत बनाने वाले हैं और हमारे स्वामी हैं। शिवजी सर्वप्रथम स्तम्भ रूप में उस समय प्रकट हुए हैं जब 'श्री हरि विष्णु' और 'ब्रह्माजी' में विवाद छिड़ गया। ऐसे कहा जाता है कि जब 'ब्रह्माजी'

पहली बार 'श्रीहरि विष्णु' के दर्शन के लिए गए तो उस समय विष्णु जी ने ब्रह्माजी को वत्स कहकर पुकारा तो अहं के वश ब्रह्माजी को बुरा लगा कि जगत पिता होने पर भी यह मुझे वत्स क्यों कहता है ? भला मैं इसको बड़ा कैसे मानूं तो इस प्रकार विवाद छिड़ा कि ब्रह्माण्ड कांप उठा। उसी समय दोनों के बीच एक 'लिङ्ग' रूपी महान तेजस्वी स्तम्भ प्रकट हुआ और ऐसा होने पर दोनों चकित रह गए और मौन हो गए। एकाएक दोनों के मुंह से निकला कि यह शक्ति कौन है ? इसकी परीक्षा करनी चाहिए। दोनों ने निर्णय किया कि ब्रह्माजी ऊपर की ओर जाकर और विष्णु जी नीचे की ओर जाकर यह खोज करेंगे कि यह स्तम्भ रूप शक्ति क्या है ? इस प्रकार ब्रह्माजी हंस का रूप धारण करके ऊपर की ओर चले और विष्णु जी ने मेरु पर्वत के समान आकार धारण करके वाराह रूप बनाया और नीचे की ओर चले गये। बहुत समय तक कोई पता न चलने पर दोनों थककर वापस आ गये और इतने में विष्णुजी ने ध्यानमग्न होकर पता लगाया और कहने लगे कि एक बार फिर खोज लगानी चाहिये कि यह तेजस्वी स्तम्भ क्या है तो एकाएक जोरदार नाद गूंज उठा। उसमें से 'ओ३म' ऐसी ध्वनि निकली। उस महान घोर नाद को सुनकर 'यह क्या' ऐसा दोनों ने कहा। तभी उस महान तेजस्वी 'लिङ्ग' के दाहिने भाग में विष्णुजी ने सनातन भगवान को देखा। उस ओ३म सनातन भगवान के आदि में अकार इसके बाद उकार तथा उससे परे में मकार है, मध्य में नाद है और

इस प्रकार 'ओ३म' ऐसा स्वरूप है यह देख लिया और ऐसा प्रत्यक्ष देखकर कहा कि यह प्रभु तुरिया अवस्था से भी परे हैं, द्वन्द रहित हैं, शून्य हैं, भीतर बाहर से परम पवित्र हैं। आदि, अन्त और मध्य से रहित हैं, आनन्द के मूल कारण हैं। ऋक्, यजु, सामवेद के तथा मात्राओं के द्वारा उन्हें ब्रह्म कहा जाता है, वे माधव हैं। 'शिव महापुराण' में ब्रह्माजी देवताओं के प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं और कहा कि यही एक अक्षर ब्रह्म है और उनको ही अमृत तथा परम कारण–सत्य, आनन्द, परब्रह्म परमात्मा जानना चाहिए। उन एकाक्षर से जो अकार स्वरूप हैं वह 'ब्रह्मा' के स्वरूप हैं, जो उकार स्वरूप हैं वह भगवान 'श्री हरि विष्णु' के स्वरूप हैं तथा मकार स्वरूप से नीललोहित 'शंकरजी' हैं। अकार नाम वाले सृष्टि के कर्ता हैं, उकार उसमें मोहने वाले हैं तथा मकार नाम वाले नित्य ही कृपा करने वाले हैं। इस 'लिङ्ग' में तीनों अकार, उकार और मकार बीज, बीजी और योनि हैं। यह सब देखते हुए श्री विष्णु ने परब्रह्म परमात्मा की स्तुति प्रारंभ की और पंचाक्षरमंत्र (नमः शिवाय) से जप किया। उनके साथ ब्रह्माजी भी स्तुति करने लगे और उनकी स्तुति से भगवान शिव प्रसन्न होकर वहां प्रकट हुए और श्री विष्णु से बोले–हे श्रेष्ठदेव ! सभी भय से छुड़ाने वाले मुझ महादेव को देखो। 'मैं' तुम दोनों पर प्रसन्न हूं। तुम दोनों पूर्वकाल में मेरे से ही उत्पन्न हुए हो। ये जो लोकों के पितामह 'ब्रह्माजी' हैं वह मेरे दाहिने भाग हैं तथा हृदय से उत्पन्न विश्वात्मा विष्णु मेरे बाएं भाग हैं। 'मैं' तुम पर

प्रसन्न हूं जो इच्छा हो आप वरदान मांगिये। इस प्रकार उन कृपा के सागर 'लिङ्ग' में स्थिति तथा 'लिङ्ग' से जो रहित है के कहने पर विष्णुजी ने उन परब्रह्म परमात्मा महेश्वर को हाथ से स्पर्श किया और बोले—हे प्रभो यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो कृप्या आप हमें अपनी अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान कीजिये। तथा हे देव हम दोनों में जो विवाद पैदा हो गया है कृप्या आप अपनी उपस्थिति में इस विवाद का समाधान कीजिये। उनके वचनों को सुनकर भगवान शिव विष्णुजी से कहते हैं—हे हरे ! तुम इस सृष्टि को स्थिति, प्रलय और नाश करने वाले हो परन्तु तुम इस चराचर जगत का पालन कीजिये और ब्रह्माजी सृष्टि की उत्पत्ति करेंगे। मैं तो परमेश्वर हूं, सृष्टि, स्थिति और प्रलय से परे हूं। ऐसा कहकर परब्रह्म परमात्मा वहां ही अंतर्ध्यान हो गए। तबसे लेकर इस संसार में लिङ्ग पूजा की प्रतिष्ठा हुई। लिङ्ग वेदी जो है वह महादेवी हैं तथा जो लिङ्ग है वह साक्षात् परमेश्वर है। सभी देवताओं का लय होने पर लिङ्ग शब्द बनता है (लयनात् लिङ्ग) और लिङ्ग ही शिव माने जाते हैं। अतः लिङ्ग ही इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के जन्मदाता हैं और शिव ही 'ब्रह्म' शब्द से कहे जाने वाले परमात्मा हैं। यही कारण है कि सब लोग लिङ्ग को निराकार रूप मानकर उन 'परम ब्रह्म परमेश्वर शिव' की पूजा करते हैं और मूर्ति रूप में साकार रूप से उनकी पूजा करते हैं। 'शिव' ही ब्रह्म हैं और उनको पूजने का सरल साधन लिङ्ग का पूजन है। शिव पुराण में लिङ्ग पूजन को मूर्ति पूजन से श्रेष्ठ माना गया

है। शिव पुराण में भगवान शिव, श्री विष्णु और ब्रह्माजी को कहते हैं कि 'सकल' और 'निष्कल' मेरे दो रूप हैं। दूसरे किसी के ऐसे रूप नहीं हैं। पहले मैं स्तम्भ रूप से प्रकट हुआ फिर अपने साक्षात् रूप से। ब्रह्मभाव मेरा निष्कल (निराकार) रूप है और 'महेश्वरभाव' 'सकल' (साकार) रूप है। ये दोनों मेरे ही सिद्ध रूप हैं। मैं ही परब्रह्म परमात्मा हूं। ब्रह्मरूप होने के कारण मैं ईश्वर हूं। जीव पर बिना हेतु कृपा करना मेरा कार्य है। पहले मेरी ब्रह्म रूपता का बोध कराने के लिए निष्कल 'लिङ्ग' प्रकट हुआ था, फिर अज्ञात ईश्वरत्व का बोध कराने के निमित्त मैं साक्षात् जगदीश्वर ही 'सकल' रूप में तत्काल प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईशत्व है उसे ही मेरा सकल रूप जानना चाहिए तथा जो मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्म स्वरूप का बोध कराने वाला है। यह लिङ्ग मेरा ही चिन्ह है अर्थात् मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्य की प्राप्ति कराने वाला है। जो भी कोई मनुष्य लिङ्ग की पूजा भक्ति, प्रेम, श्रद्धा से ॐ नमः शिवाय मंत्र जपते करता है, वह शिवभक्त निःसंदेह शिवसम हो जाता है।

कश्मीर में हर जगह, हर गांव में जहां भी कहीं दो घर भी हिन्दू निवास करते हैं वह पहले गांव में एक छोटा मंदिर बनाकर लिङ्ग स्थापना करते हैं। क्योंकि वहां प्रवचन देने वाले महात्मा, पंडितजन, ज्ञानी नहीं पहुंचते। इसलिए सुगम व सरल उपाय व उत्तम उपाय पूजा का यही बनाते थे। अपने बच्चों को शिक्षा देते कि यही लिङ्ग तुम्हारा भगवान है जो कुछ मांगना है इसी से मांग लो।

यह शिक्षा देते थे कि स्वच्छ मन और तन से, श्रद्धा से शुद्ध एवं ताजा जल लिङ्ग पर चढ़ायें और ॐ नमः शिवाय जपते रहें तो सर्वत्र कामनाएं पूर्ण होंगी और यही सत्य भी है।

गीताजी में स्पष्ट लिखा गया है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(अध्याय–९ श्लोक–२६)

अर्थ :–यदि कोई, प्रेम तथा भक्ति के साथ मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल प्रदान करता है, तो मैं उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हूं।

नित्य सुख के लिए स्थायी, आनन्दमय धाम प्राप्त करने हेतु बुद्धिमान व्यक्ति के लिये यह अनिवार्य है कि वह भगवान की भावना से भावित होकर भगवान की दिव्य प्रेम भक्ति में तत्पर रहे। ऐसा फल प्राप्त करने की विधि सरल है, और कोई भी धनवान, निर्धन, ज्ञानी, अज्ञानी, या कोई कहां स्थित है या कोई क्या है, यह फल प्राप्त कर सकता है। जो भी ऐसा करना चाहता है वह भगवान का परम भक्त है और उसी परम भक्ति से यदि वह भगवान को प्रेमपूर्वक एक पत्ता, थोड़ा सा जल या फल भगवान के 'लिङ्ग' रूप को अर्पित करता है तो भगवान उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। भगवान को केवल प्रेम– भक्ति चाहिये और कुछ भी नहीं चाहिए। प्रभु अपने भक्त से एक छोटा–सा फूल तक ग्रहण कर लेते

हैं। प्रभु को किसी से कुछ नहीं चाहिये क्योंकि वे आत्मतुष्ट हैं, तो भी वे अपने भक्त की छोटी-सी भेंट भी प्रेम तथा स्नेह के विनिमय में स्वीकार करते हैं। 'शिव' की भावना का अमृत विकसित करना जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए। ऊपर कथित श्लोक में भक्ति शब्द का उल्लेख दो बार यह सूचित करने के लिए हुआ है कि भक्ति ही प्रभु के पास पहुंचने का एकमात्र साधन है। किसी अन्य शर्त से, प्रकार से, यथा ब्राह्मण, विद्वान, धनी या महान विचारक होने से प्रभु किसी प्रकार की भेंट लेने को तैयार नहीं होते। भक्ति ही मूलसिद्धांत है, जिसके बिना वे किसी से कुछ भी लेने के लिए प्रेरित नहीं किये जा सकते। भक्ति कभी हेतु की नहीं होती। यह शाश्वत विधि है। यह परमब्रह्म की सेवा में प्रत्यक्ष कर्म है। प्रभु ने यह भी स्पष्ट किया है कि वे ही एकमात्र भोक्ता हैं, स्वामी हैं और समस्त यज्ञ-भेंटों के वास्तविक लक्ष्य हैं और यह भी बताते हैं कि वे किस प्रकार की भेंट पसंद करते हैं। यदि कोई जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने के उद्देश्य से भगवद् भक्ति करना चाहता हो तो उसे जानना चाहिये कि भगवान् उससे क्या चाहते हैं। प्रभु को प्रेम करने वाला उन्हें उनकी इच्छित वस्तु देगा और कोई वस्तु नहीं देगा जो उन्हें पसन्द न हो या उन्होंने न मांगी हो। इस प्रकार प्रभु को केवल शाकाहारी भोजन भेंट किये जाने चाहिए, वह भी स्वच्छ, मेहनत की कमाई के, प्रेमपूर्वक अथवा भक्तिपूर्वक होने चाहिएं। गीताजी में कहीं भी प्रभु ने मांस, मछली, अंडे का वर्णन

नहीं किया परन्तु शाक, अन्न, फल दूध तथा जल का वर्णन किया है और इसी का आदेश दिया है। उत्तम भोजन, शाकाहारी भोजन ही है और प्रभु को यही अर्पित करना उचित है। मनुस्मृति में मांस का अर्थ कुछ ऐसे कहा गया है—

मांस = मां—स।

मां = जो मुझे खायेगा।

स = उसे मैं खाऊंगा।

अतः मांस खाना वर्जित है पूर्ण रूप से। शाकाहारी भोजन से उत्तम सोच, उत्तम कर्म करने की प्रेरणा और मस्तिष्क के श्रेष्ठ तन्तु उत्पन्न होते हैं और शुद्ध चिन्तन हो पाता है।



'लिङ्ग' पूजन में सुविधा :

जल, सूखा फूल या फल या दूध वह भी यथाशक्ति लिङ्ग रूपी भगवान शिव को भक्ति से अर्पित करने वाला शिवभक्त है।

'नमः शिवाय' मंत्र का उच्चारण करने वाला निःसंदेह शिव प्रेमी है। ऐसे भक्त को चाहिये कि वह कान से भगवान शिव के नाम, गुण लीलाओं का श्रवण, वाणी द्वारा उनका कीर्तन तथा मन के द्वारा उनका मनन करे। इन तीनों को महान साधन कहा गया है। तात्पर्य यह कि महेश्वर का श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये। शिवपुराण में सूतजी, शौनकजी से कहते हैं कि श्रवण, कीर्तन और मनन महान साधन हैं और मुक्ति का उपाय हैं किन्तु जो इन तीनों साधनों के अनुष्ठान में समर्थ न हो, वह भगवान शिव के 'लिङ्ग' की श्रद्धा, भक्ति , प्रेम, स्वच्छ मन से नित्य पूजा करे तो संसार सागर से पार हो जाएगा।

जो मनुष्य नित्य 'लिङ्ग पूजन करता हो, उसे चाहिये कि वह मार्गशीर्ष की पूर्णमासी को व्रत रखे और विधि अनुसार 'लिङ्ग' का पूजन जल, फल, फूल, धूप, दीप अर्पित करके करे। विशेषतौर पर उसको चाहिये कि मार्गशीर्ष मास में आर्द्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी को नियत कर्म अनुसार तप, जप, पूजा, पाठ करे। उसके लिए प्रभु

आश्वासर्न देते हैं कि वह निःसंदेह शिवसम हो जाता है। तो प्रत्येक हिन्दू को चाहिये कि वह नित्य 'लिङ्ग' पूजन करे और अपना जीवन सफल करे।

— o —

प्रभु में जिसका हो अचल, शुचि श्रद्धा विश्वास।
कभी न होता वह विफल, कभी न कहीं निराश।।

ॐ इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन में देवः प्रीयतांच सदाशिवः।।

निवेदन : आशा है कि इस पुस्तक के पाठकगण पुस्तक में रही त्रुटियों की ओर ध्यान न देंगे केवल लेखक के भाव की ओर ध्यान देंगे। प्रभु हम सबको अपनी अनन्य भक्ति प्रदान करें।



A.H.W. SADHNA SERIES

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

भावार्थ : उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

नम्र निवेदन : हर हिन्दू जिसने यज्ञोपवीत धारण किया हो, जनेऊ अपने गले में सारी उम्र डाले रखें और प्रतिदिन प्रातःकाल जनेऊ धोते समय तीन बार उपर लिखित गायत्री मंत्र का उच्चारण करें।

'लेखक'



साधना पॉकेट बुक्स